किसान और काश्तकार

पिछले दो अध्यायों में आप वनों और चरागाहों के बारे में पढ़ रहे थे, और उनके बारे में भी जो इन स्रोतों से रोज़ी-रोटी अर्जित करते हैं। आपने झूम खेती करने वालों, चरवाहों और जनजातीय समूहों के बारे में भी पढ़ा। आपने जाना कि किस तरह वनों और चरागाहों को आधुनिक सरकारों ने नियंत्रित करना शुरू किया और उनकी पाबंदियों से उन पर भी असर पड़ा जो इन संसाधनों पर आश्रित थे।

इस अध्याय में आप विभिन्न देशों के खेतिहर समुदायों के बारे में पढ़ेंगे। यहाँ एक ओर इंग्लैंड के छोटे किसानों (कॉटेजर), अमेरिका के गेहूँ उत्पादकों और बंगाल के अफ़ीम उत्पादक किसानों के बारे में जानकारी हासिल करेंगे वहीं दूसरी तरफ़ आप जानेंगे कि आधुनिक खेती की शुरुआत का विभिन्न देहाती समूहों पर क्या प्रभाव पड़ा। यह भी कि विश्वव्यापी पूँजीवादी बाज़ार से जुड़ने का दुनिया के अलग-अलग इलाकों पर क्या प्रभाव पड़ता है। इन विभिन्न स्थानों की तुलना से आप यह जान पाएँगे कि इन स्थानों का इतिहास एक-दूसरे से भिन्न होते हुए भी एक प्रक्रिया के रूप में कितना मिलता-जुलता रहा है।

आइए इस सफ़र की शुरुआत इंग्लैंड से ही करें जहाँ कृषि क्रांति ने पहली दस्तक दी थी।

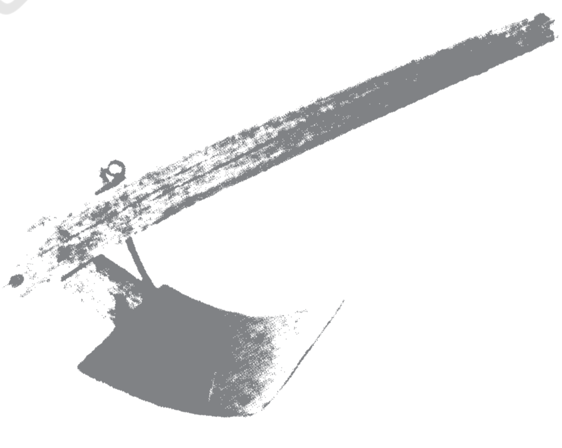

© NCERT not to be republished

1 इंग्लैंड में आधुनिक खेती की शुरुआत

पहली जून 1830 की घटना है। इंग्लैंड के उत्तर-पश्चिमी क्षेत्र के एक किसान ने अचानक पाया कि उसके बाड़े में रात को आग लगने से पुआल सहित सारा खलिहान जलकर राख हो गया है। बाद के महीनों में इस तरह की घटनाएँ कई दूसरे ज़िलों में भी दर्ज की गईं। कहीं सिर्फ़ पुआल जल जाती और कहीं तो पूरा का पूरा फ़ार्म हाऊस ही स्वाहा हो जाता था। फिर 28 अगस्त 1830 के दिन इंग्लैंड के ईस्ट केंट में मज़दूरों ने एक थ्रेशिंग मशीन को तोड़ कर नष्ट कर दिया। इसके बाद दो साल तक दंगों का दौर चला जिसमें तोड़-फोड़ की ये घटनाएँ पूरे दक्षिणी इंग्लैंड में फैल गईं। इस दौरान लगभग 387 थ्रेशिंग मशीनें तोड़ी गईं। किसानों को धमकी भरे पत्र मिलने लगे कि वे इन मशीनों का इस्तेमाल करना बंद कर दें क्योंकि इनके कारण मेहनतकशों की रोज़ी छिन गई है। ज़्यादातर खतों पर 'कैप्टेन स्विंग' नाम के किसी आदमी के दस्तखत होते थे। ज़मींदारों को यह खतरा सताने लगा कि कहीं हथियारबंद गिरोह रात में उन पर भी हमला न बोल दें। इस चक्कर में बहुत सारे ज़मींदारों ने तो अपनी मशीनें खुद ही तोड़ डालीं। जवाब में सरकार ने सख्त कार्रवाई की। जिन लोगों पर शक था कि वे दंगे में लिप्त हैं उन्हें फ़ौरन गिरफ़्तार कर लिया गया। 1976 लोगों पर मुकदमा चला, 9 को फाँसी दी गई और 505 को देश निकाला दिया गया जिनमें से 450 को ऑस्ट्रेलिया भेज दिया गया। लगभग 644 लोगों को बंदी बनाया गया।

इन खतों में मौजूद 'कैप्टेन स्विंग' एक मिथकीय नाम था। तो स्विंग के नाम पर दंगे करने वाले आखिर थे कौन? वे थ्रेशिंग मशीनों को तोड़ने पर क्यों आमादा थे? वे किस बात का विरोध कर रहे थे? इन सवालों का जवाब जानने के लिए हमें अठारहवीं और उन्नीसवीं सदी के दौरान इंग्लैंड की खेती में आए बदलाव को देखना होगा।

1.1 खुले खेतों और कॉमन्स का दौर

अठारहवीं सदी के अंतिम वर्षों और उन्नीसवीं सदी के शुरुआती दौर में इंग्लैंड के देहाती इलाकों में नाटकीय बदलाव हुए। पहले इंग्लैंड का ग्रामीण क्षेत्र काफ़ी खुला-खुला हुआ करता था। न तो ज़मीन भूस्वामियों की निजी संपत्ति थी और न ही उसकी **बाड़ाबंदी** की गई थी। किसान अपने गाँव के आसपास की ज़मीन पर फ़सल उगाते थे। साल की शुरुआत में एक सभा बुलाई जाती थी जिसमें गाँव के हर व्यक्ति को ज़मीन के टुकड़े आवंटित कर दिए जाते थे। ज़मीन के ये टुकड़े समान रूप से उपजाऊ नहीं होते थे और कई जगह बिखरे होते थे। कोशिश यह होती थी कि हर किसान को अच्छी और खराब, दोनों तरह की ज़मीन मिले। खेती की इस ज़मीन के परे साझा ज़मीन होती थी। **कॉमन्स** की इस साझा ज़मीन पर सारे ग्रामीणों का हक होता था। यहाँ वे अपने मवेशी और भेड़-बकरियाँ चराते थे, जलावन की

नए शब्द

बाड़ाबंदी: पारंपरिक खुली ज़मीनों पर निजी बाड़ लगाने की ऐतिहासिक प्रक्रिया।

कॉमन्स: पारंपरिक समाजों में साझा, सामुदायिक जल-जंगल-ज़मीन।

स्रोत क

ये धमकी भरे खत काफ़ी बड़े पैमाने पर भेजे जाते थे। कई बार इन खतों की भाषा काफी शालीन होती थी जबकि कई बार बहुत कड़ी भाषा का इस्तेमाल किया जाता था। कुछ पत्र बहुत छोटे होते थे। देखें एक नमूना :

श्रीमान

हम आपको यह बताना चाहते हैं कि अगर आपने अपनी थ्रेशिंग मशीन खुद नहीं तोड़ी तो हम अपने लोगों को भेज कर यह काम कराएँगे।

सब लोगों की ओर से

स्विंग

इ.जे. हॉब्सबॉम और जॉर्ज रूदे, *कैप्टेन स्विंग* से।

© NCERT not to be republished

लकड़ियाँ बीनते थे और खाने के लिए कंद-मूल-फल इकट्‌ठा करते थे। जंगल में वे शिकार करते और नदियों, ताल-तलैयों में मछली पकड़ते। गरीबों के लिए तो यह साझा ज़मीन ज़िंदा रहने का बुनियादी साधन थी। इसी ज़मीन के बल पर वे लोग अपनी आय में कमी को पूरा करते, अपने जानवरों को पालते। जब किसी साल फ़सल चौपट हो जाती तो यही ज़मीन उन्हें संकट से उबारती थी।

इंग्लैंड के कुछ हिस्सों में खुले खेतों और मुक्त और साझी ज़मीन की यह अर्थव्यवस्था सोलहवीं शताब्दी से ही बदलने लगी थी। सोलहवीं सदी में जब ऊन के दाम विश्व बाज़ार में चढ़ने लगे तो संपन्न किसान लाभ कमाने के लिए ऊन का उत्पादन बढ़ाने की कोशिश करने लगे। इसके लिए उन्हें भेड़ों की नस्ल सुधारने और बेहतर चरागाहों की आवश्यकता हुई। नतीजा यह हुआ कि साझा ज़मीन को काट-छाँट कर घेरना शुरू कर दिया गया ताकि एक की संपत्ति दूसरे से या साझा ज़मीन से अलग हो जाए। साझा ज़मीन पर झोपड़ियाँ डाल कर रहने वाले ग्रामीणों को उन्होंने निकाल बाहर किया और बाड़ाबंद खेतों में उनका प्रवेश निषिद्ध कर दिया गया। यह बाड़ाबंदी की शुरुआत थी।

अठारहवीं शताब्दी के मध्य तक बाड़ाबंदी आंदोलन की रफ़्तार काफी धीमी रही। शुरू में गिने-चुने भूस्वामियों ने अपनी पहल पर ही बाड़ाबंदी की थी। इसके पीछे राज्य या चर्च का हाथ नहीं था। लेकिन अठारहवीं सदी के दूसरे हिस्से में बाड़ाबंदी आंदोलन इंग्लैंड के पूरे देहात में फैल गया और इसने इंग्लैंड के भूदृश्य को आमूल बदलकर रख दिया। 1750 से 1850 के बीच 60 लाख एकड़ ज़मीन पर बाड़ें लगाई गईं। ब्रिटेन की संसद ने सक्रिय भूमिका निभाते हुए इन बाड़ों को वैधता प्रदान करने के लिए 4,000 कानून पारित किए।

स्रोत ख

स्विंग की ओर से सख्त भाषा में भेजे गए खत का एक नमूना :

श्रीमान,

आपका नाम ब्लैक बुक में दर्ज ब्लैक हार्ट्स की सूची में रखा गया है। आप और आप जैसे अन्य लोगों को सलाह दी जाती है ... कि अपना इरादा बताएँ।

आप हर अवसर पर जनता के विरोधी रहे हो। आपको जैसा करना चाहिए था अभी तक आपने वैसा किया नहीं है।

स्विंग

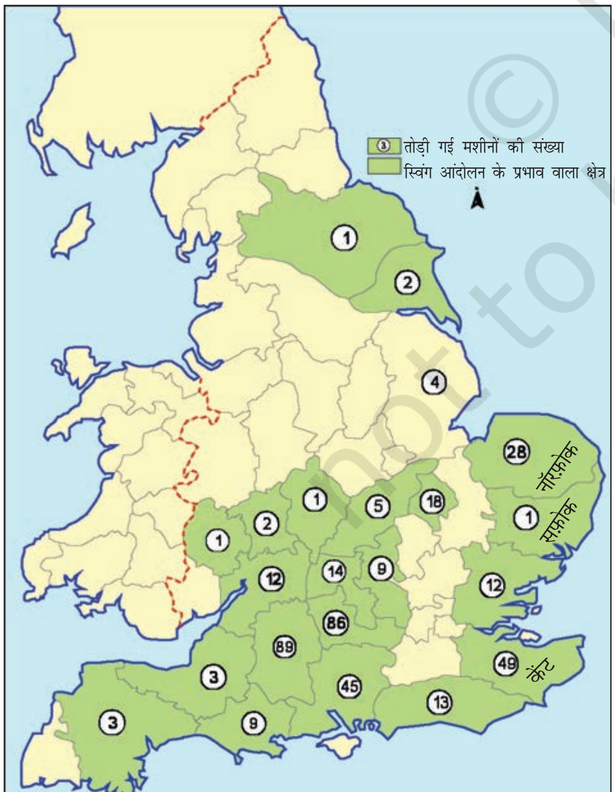

चित्र 1 – कैप्टेन स्विंग आंदोलन (1830-32) के दौरान इंग्लैंड की विभिन्न काउंटियों में तोड़ी गई थ्रेशिंग मशीनें.
ई. जे. हॉब्सबॉम तथा जॉर्ज रूदे की पुस्तक कैप्टेन स्विंग *पर आधारित।*

© NCERT not to be republished

1.2 अनाज की बढ़ती माँग

ज़मीन को बाड़ाबंद करने की ऐसी जल्दबाज़ी क्यों थी? और, इन बाड़ों का मतलब क्या था? नए बाड़े पुराने बाड़ों से भिन्न थे। जहाँ सोलहवीं शताब्दी के बाड़ों में भेड़ पालन का विकास किया गया, वहीं अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों में बाड़ाबंदी का उद्देश्य अनाज उत्पादन बढ़ाना हो गया, और इसका संदर्भ भी अलग था–एक नए दौर का सूचक। अठारहवीं शताब्दी के मध्य से इंग्लैंड की आबादी तेज़ी से बढ़ी। 1750 से 1900 के बीच इंग्लैंड की आबादी चार गुना बढ़ गई। 1750 में कुल आबादी 70 लाख थी जो 1850 में 2.1 करोड़ और 1900 में 3 करोड़ तक जा पहुँची। ज़ाहिर है कि अब ज़्यादा अनाज की ज़रूरत थी। इसी दौर में इंग्लैंड का औद्योगीकरण भी होने लगा था। बहुत सारे लोग रहने और काम करने के लिए गाँव से शहरों का रुख करने लगे थे। खाद्यान्नों के लिए वह बाज़ार पर निर्भर होते गए। इस तरह जैसे-जैसे शहरी आबादी बढ़ी वैसे-वैसे खाद्यान्नों का बाज़ार भी फैलता गया और खाद्यान्नों की माँग के साथ उनके दाम भी बढ़ने लगे।

अठारहवीं सदी के अंत में फ्रांस और इंग्लैंड के बीच युद्ध शुरू हो गया। इसकी वजह से यूरोपीय खाद्यान्नों के आयात सहित व्यापार बाधित हुआ। इसका नतीजा यह हुआ कि इंग्लैंड में खाद्यान्नों के दाम आसमान छूने लगे। इससे उत्साहित होकर भूस्वामी अपनी बाड़ाबंद ज़मीन में बड़े पैमाने पर अनाज उगाने लगे। उनकी तिजोरियाँ भरने लगीं और उन्होंने बाड़ाबंदी कानून पारित करने के लिए संसद पर दबाव डालना शुरू कर दिया।

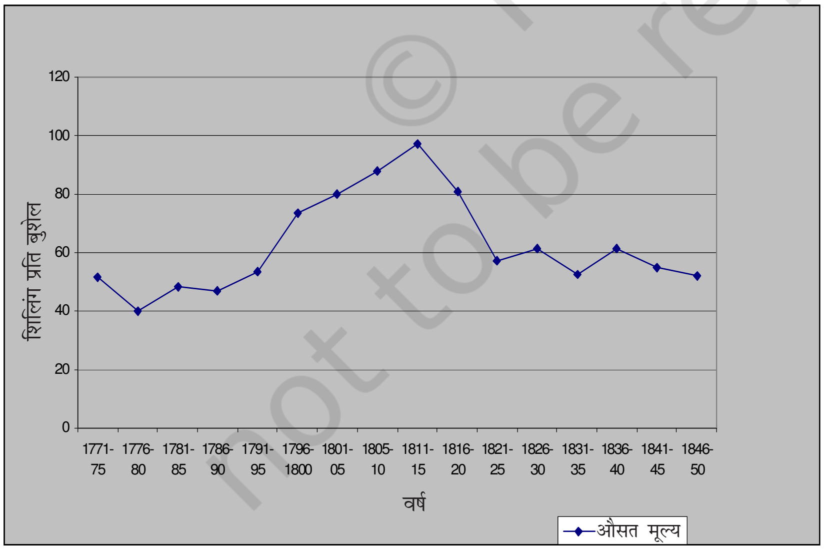

चित्र 2 : इंग्लैंड और वेल्स में गेहूँ के दामों का वार्षिक औसत : 1771-1850.

नए शब्द

बुशेल : क्षमता की माप

शिलिंग : इंग्लैंड की एक मुद्रा का नाम। 20 शिलिंग = 1 पौंड

क्रियाकलाप

ग्राफ़ को ध्यानपूर्वक देखें। गौर करें कि मूल्य रेखा 1790 के दौरान किस प्रकार तेज़ी से ऊपर उठती है और 1815 के बाद नाटकीय ढंग से नीचे गिरने लगती है। क्या आप ग्राफ़ की इन रेखाओं में आए इन उतार-चढ़ावों के कारणों का पता लगा सकते हैं।

चित्र 3 – उन्नीसवीं सदी की शुरुआत में सफ़ोक का देहाती इलाका.

अंग्रेज़ चित्रकार जॉन कॉन्सटेबल की कृति। कॉन्सटेबल के पिता अनाज के बड़े व्यापारी थे। कॉन्सटेबल का बचपन पूर्वी इंग्लैंड के ग्रामीण क्षेत्र सफ़ोक में बीता। इस क्षेत्र में बाड़ाबंदी का काम उन्नीसवीं सदी से काफ़ी पहले पूरा हो चुका था। कॉन्सटेबल के चित्र देहात के खुले जीवन को बड़े भावपूर्ण ढंग से उकेरते हैं। उनके चित्र हमें एक ऐसे दौर से परिचित कराते हैं जब देहात का सीधा, सरल और खुशनुमा जीवन अतीत की बात बनता जा रहा था और खुले खेतों की बाड़ाबंदी की जा रही थी। इस चित्र में हम खेतों पर लगी बाड़ें देख सकते हैं। लेकिन इससे हमें यह पता नहीं चलता कि तत्कालीन भूदृश्य कैसे बदलता जा रहा था। कॉन्सटेबल के चित्रों में हमें आमतौर पर मेहनतकश जनता दिखाई नहीं देती। चित्र 1 पर नज़र डालने से पता चलता है कि सफ़ोक ऐसे इलाकों से घिरा हुआ था जहाँ स्विंग दंगों के दौरान बड़े पैमाने पर थ्रेशिंग मशीनें तोड़ी गई थीं।

1.3 बाड़ाबंदी का युग

इंग्लैंड के इतिहास में 1780 का दशक पहले के किसी भी दौर से ज़्यादा नाटकीय दिखाई देता है। इससे पहले अकसर यह होता था कि आबादी बढ़ने से खाद्यान्न का संकट गहरा जाता था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी में इंग्लैंड में ऐसा नहीं हुआ। जिस तेज़ी से आबादी बढ़ी, उसी हिसाब से खाद्यान्न उत्पादन भी बढ़ा। जनसंख्या वृद्धि की तेज़ रफ़्तार के बावजूद 1868 में खाद्यान्न की अपनी ज़रूरतों का अस्सी प्रतिशत इंग्लैंड खुद पैदा कर रहा था। बाकी का आयात किया जा रहा था।

खाद्यान्न उत्पादन में हुई यह वृद्धि खेती की तकनीक में हुए किसी नए बदलाव का परिणाम नहीं थी। बल्कि हुआ सिर्फ़ यह कि नई-नई ज़मीन पर खेती की जाने लगी। भूस्वामियों ने मुक्त खेतों, सार्वजनिक जंगलों, दलदली ज़मीन और चरागाहों को काट-छाँट कर बड़े-बड़े खेत बना लिए थे।

इस समय तक किसान खेती में उन्हीं सरल तकनीकों का इस्तेमाल कर रहे थे जो अठारहवीं सदी के प्रारंभ में बड़े पैमाने पर प्रचलित थीं। 1660 के दशक में इंग्लैंड के कई हिस्सों में किसान शलजम और तिपतिया घास (क्लोवर) की खेती करने लगे थे। उन्हें जल्द ही अहसास हो गया कि इन

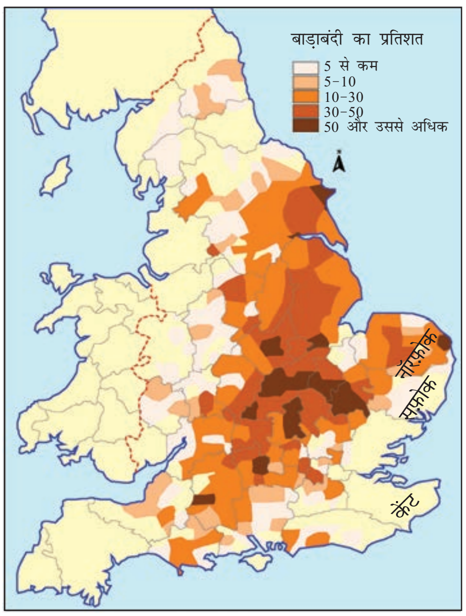

चित्र 4 – संसदीय कानूनों के तहत सार्वजनिक भूमि की बाड़ाबंदी : अठारहवीं-उन्नीसवीं सदी.

ई. जे. हॉब्सबॉम तथा जॉर्ज रूदे की पुस्तक कैप्टेन स्विंग पर आधारित।

© NCERT not to be republished

फ़सलों से ज़मीन की पैदावार बढ़ती है। फिर, शलजम को पशु भी बड़े चाव से खाते थे। इसलिए वे शलजम और तिपतिया घास की खेती नियमित रूप से करने लगे। बाद के अध्ययनों से पता चला कि इन फ़सलों से ज़मीन में नाइट्रोजन की मात्रा बढ़ जाती है जो फ़सल वृद्धि के लिए महत्त्वपूर्ण थी। असल में लगातार खेती करने से ज़मीन में नाइट्रोजन की मात्रा घट जाती है जिसके कारण ज़मीन की उर्वरता भी कम होने लगती है। शलजम और तिपतिया घास की खेती से ज़मीन में नाइट्रोजन की मात्रा फिर से बढ़ जाती थी और ज़मीन फिर उपजाऊ हो जाती थी। इस तरह उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक वर्षों में खेती में सुधार लाने के लिए किसान इन्हीं सरल तरीकों का नियमित रूप से इस्तेमाल करने लगे थे।

अब बाड़ाबंदी को एक दीर्घकालिक निवेश के रूप में देखा जाने लगा था और मिट्टी की उर्वरता बढ़ाने के लिए लोग बदल-बदल कर फ़सलें बोने लगे थे। बाड़ाबंदी से अमीर भूस्वामियों को अपनी जोत बढ़ाने और बाज़ार के लिए पहले से ज़्यादा उत्पादन करने की सहूलियत मिली।

1.4 गरीबों पर क्या बीती ?

बाड़ाबंदी ने भूस्वामियों की तिजोरियाँ भर दीं। पर उन लोगों का क्या हुआ जो रोज़ी-रोटी के लिए कॉमन्स पर ही आश्रित थे? बाड़ लगने से बाड़े के भीतर की ज़मीन भूस्वामी की निजी संपत्ति बन जाती थी। गरीब अब न तो जंगल से जलावन की लकड़ी बटोर सकते थे और न ही साझा ज़मीन पर अपने पशु चरा सकते थे। वे न तो सेब या कंद-मूल बीन सकते थे और न ही गोश्त के लिए शिकार कर सकते थे। अब उनके पास फ़सल कटाई के बाद बची ठूंठों को बटोरने का विकल्प भी नहीं रह गया था। हर चीज़ पर जमींदारों का कब्ज़ा हो गया, हर चीज़ बिकने लगी और वह भी ऐसी कीमतों पर कि जिन्हें अदा करने की सामर्थ्य गरीबों के पास नहीं थी।

जहाँ कहीं बड़े पैमाने पर बाड़ाबंदी हुई, खासतौर पर इंग्लैंड के मध्यवर्ती क्षेत्रों और आसपास के प्रांतों (काउंटियों) में, वहाँ गरीबों को ज़मीन से बेदखल कर दिया गया। उनके पारंपरिक अधिकार धीरे-धीरे खत्म होते गए। अपने अधिकारों से वंचित और ज़मीन से बेदखल होकर वे नए रोज़गार की तलाश में दर-दर भटकने लगे। मध्यवर्ती क्षेत्रों से वे दक्षिणी प्रांतों की ओर जाने लगे। मध्य क्षेत्र में सबसे सघन खेती होती थी और वहाँ खेतिहर मज़दूरों की भारी माँग थी। लेकिन अब कहीं भी गरीबों को एक सुरक्षित और नियमित रोज़गार नहीं मिल पा रहा था।

पुराने ज़माने में आमतौर पर मज़दूर भूस्वामियों के साथ ही रहा करते थे। वे मालिकों के साथ खाना खाते और साल भर उनकी सेवा-टहल करते थे। यह रिवाज 1800 तक आते-आते समाप्त होने लगा था। अब मज़दूरों को काम के बदले दिहाड़ी दी जाती थी और काम भी केवल कटाई के दौरान ही होता था। जमींदार अपना मुनाफ़ा बढ़ाने के लिए मज़दूरों की दिहाड़ी की मद में कटौती करने लगे। काम अनिश्चित, रोज़गार असुरक्षित और आय अस्थिर हो गई। वर्ष के बड़े हिस्से में गरीब बेरोज़गार रहने लगे।

क्रियाकलाप

औरतों और बच्चों पर क्या प्रभाव पड़ा?

गो-पालन, जलावन की लकड़ी बीनने, सार्वजनिक भूमि पर फलों और बेरियों को इकट्ठा करने का काम पहले अकसर औरतें और बच्चे करते थे।

क्या आप बता सकते हैं कि बाड़ाबंदी का बच्चों और स्त्रियों पर क्या प्रभाव पड़ा होगा?

सार्वजनिक भूमि की समाप्ति का परिवार के भीतर स्त्री-पुरुष और बच्चों के आपसी संबंधों पर क्या असर हुआ होगा?

2018-19
© NCERT not to be republished

1.5 थ्रेशिंग मशीन का आगमन

जिन दिनों नेपोलियन इंग्लैंड के विरुद्ध युद्ध छेड़े हुए था, उन दिनों खाद्यान्न के भाव काफ़ी ऊँचे थे और काश्तकारों ने जमकर अपना उत्पादन बढ़ाया। मज़दूरों की कमी के डर से उन्होंने बाज़ार में नई-नई आई थ्रेशिंग मशीनों को खरीदना शुरू कर दिया। काश्तकार अकसर मज़दूरों के आलस, शराबखोरी और मेहनत से जी चुराने की शिकायत किया करते थे। उन्हें लगा कि मशीनों से मज़दूरों पर उनकी निर्भरता कम हो जाएगी।

युद्ध समाप्त होने के बाद बहुत सारे सैनिक अपने गाँव और खेत-खलिहान में वापस लौट आए। अब उन्हें नए रोज़गार की ज़रूरत थी। लेकिन उसी समय यूरोप से अनाज का आयात बढ़ने लगा, उसके दाम कम हो गए और कृषि मंदी छा गई (चित्र 2 में कीमतों का ग्राफ़ देखें)। बेचैन होकर भूस्वामियों ने खेती की ज़मीन को कम करना शुरू कर दिया और माँग करने लगे कि अनाज का आयात रोका जाए। उन्होंने मज़दूरों की दिहाड़ी और संख्या कम करनी शुरू कर दी। गरीब और बेरोज़गार लोग काम की तलाश में गाँव-गाँव भटकते थे और जिनके पास अस्थायी-सा कोई काम था, उन्हें भी आजीविका खो जाने की आशंका रहती थी।

यही वह दौर था जब देहात में कैप्टेन स्विंग वाले दंगे फैले। गरीबों की नज़र में थ्रेशिंग मशीन बुरे वक्त की निशानी बन कर आई।

निष्कर्ष

इस तरह इंग्लैंड में आधुनिक खेती के आगमन से कई तरह के बदलाव आए। मुक्त खेत समाप्त हो गए और किसानों के पारंपरिक अधिकार भी जाते रहे। अमीर किसानों ने पैदावार में वृद्धि और अनाज को बाज़ार में बेच कर मोटा मुनाफ़ा कमाया और ताकतवर हो गए। गाँव के गरीब बड़ी संख्या में शहरों की ओर पलायन करने लगे। कुछ लोग मध्यवर्ती क्षेत्रों को छोड़कर दक्षिणी प्रांतों का रुख करने लगे जहाँ रोज़गार की संभावना बेहतर थी तो कुछ अन्य शहरों की ओर चल पड़े। मज़दूरों की आय का ठिकाना न रहा, रोज़गार असुरक्षित और आजीविका के स्रोत अस्थिर हो गए।

स्रोत ग

बाड़ाबंदी के कारण सार्वजनिक ज़मीन पर अधिकार समाप्त होने से एक किसान ने स्थानीय ज़मींदार को यह पत्र लिखा था :

'अगर कोई गरीब आदमी सार्वजनिक ज़मीन से आपकी एक भेड़ ले ले तो कानून उसके खिलाफ़ खड़ा हो जाएगा। लेकिन अगर आप सैकड़ों गरीबों की भेड़-बकरियों के चरने की ज़मीन छीन लेते हैं तो कानून कुछ नहीं करता। अगर गरीब आदमी आपसे कोई चीज़ छीन ले तो उसको फाँसी दे दी जाती है जबकि अगर आप उस व्यक्ति की आजीविका छीन लें तो आपके खिलाफ कोई कार्रवाई नहीं की जाती...। गरीब इस बात को किस तरह समझें... कि कानून उनकी पहुँच से बाहर है और सरकार उनके लिए कुछ नहीं करती'?

जे. एम. नीसन, *कॉमनर्स : कॉमन राइट्स, एनक्लोज़र्स एण्ड सोशल चेंज, 1700-1820* (1993) से उद्धृत।

स्रोत घ

इसके विपरीत बहुत से लेखकों ने बाड़ाबंदी के लाभों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है।

'खुले खेतों और बाड़ाबंदी की ज़मीन के बीच कोई तुलना नहीं की जा सकती। बाड़ाबंदी की व्यवस्था निश्चित रूप से खुले खेतों से बेहतर है। खुले खेतों के मामले में खेतिहर ज़ंजीरों में जकड़ा रहता है। वह मिट्टी या मूल्यों में कोई बदलाव नहीं ला सकता। उसकी हालत उस घोड़े जैसी होती है जो अन्य घोड़ों के साथ बंधा होता है। यानी वह उनसे अलग होकर कुछ नहीं कर सकता और उनके बीच ही कूद-फांद कर सकता है'।

जॉन मिडिल्टन, अठाहरवीं शताब्दी के एक लेखक।

क्रियाकलाप

स्रोत ग और घ को पढ़ें और निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दें :

- स्रोत ग में किसान क्या कहना चाहता है?
- जॉन मिडिल्टन क्या दलील देना चाहते हैं?
- खंड 1.1 से 1.4 तक दोबारा पढ़ें और खुले खेतों के पक्ष और विपक्ष में दिए गए तर्कों का सार-संक्षेप प्रस्तुत करें। आप किस तर्क को ज़्यादा उचित समझते हैं?

© NCERT not to be republished

2 'रोटी की टोकरी' और रेतीला बंजर

आइए अब जरा अटलांटिक के पार अमेरिका चलें। आइए देखें कि यहाँ आधुनिक खेती का विकास कैसे हुआ, किस तरह अमेरिका दुनिया की 'रोटी की टोकरी' (ब्रेड बास्केट) बनकर उभरा और इन बदलावों का अमेरिका के ग्रामीणों पर क्या प्रभाव पड़ा?

जब अठारहवीं सदी के अंत में इंग्लैंड में साझा ज़मीन को बाड़ाबंद किया जा रहा था उस समय तक अमेरिका में बड़े पैमाने पर स्थायी खेती का विकास नहीं हुआ था। यहाँ 80 करोड़ एकड़ भूमि पर जंगल थे और 60 करोड़ एकड़ भूमि पर सिर्फ़ घास उगती थी। चित्र 5 से आप उस समय की प्राकृतिक हरियाली के बारे में अंदाज़ा लगा सकते हैं।

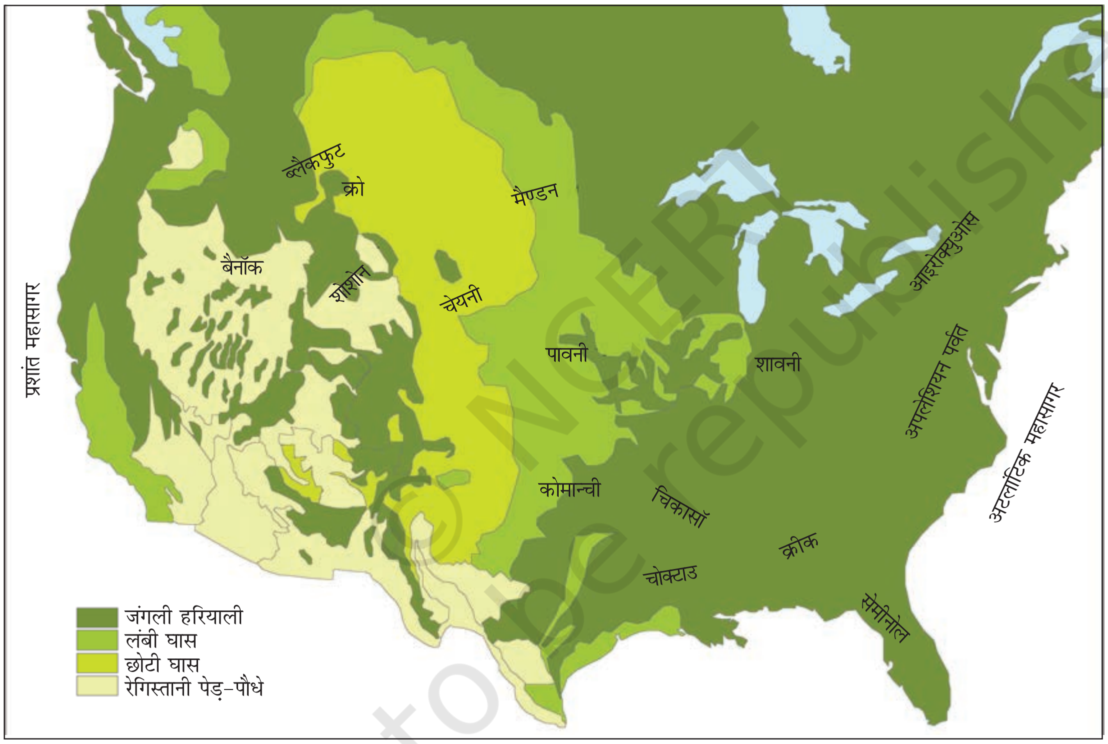

चित्र 5 – श्वेत आप्रवासियों के पश्चिमी प्रसार से पहले अमेरिका में जंगल और घास के मैदानों की स्थिति.
बेकर की पुस्तक इकनॉमिक ज्यॉग्रफ़ी, खण्ड 2, 1926 में संकलित 'एग्रीकल्चरल रीजन्स ऑफ़ नॉर्थ अमेरिका' से उद्धृत। जंगलों का करीब आधा और घास के मैदानों का एक-तिहाई हिस्सा खेती के लिए साफ़ किया गया था। मानचित्र में आप उन्नीसवीं सदी के प्रारंभिक काल में अमेरिका के विभिन्न मूल कबीलों के निवास क्षेत्रों को भी देख सकते हैं।

उस समय अमेरिकी भूदृश्य का ज़्यादातर हिस्सा श्वेत अमेरिकियों के नियंत्रण में नहीं था। 1780 के दशक तक श्वेत अमेरिकी बसावट पूर्वी तट की एक छोटी संकीर्ण पट्टी तक सीमित थी। अगर आप उस समय अमेरिका की सैर पर निकलते तो आपको जगह-जगह अमेरिका के मूल निवासियों के बड़े-बड़े समूह मिलते। इनमें से कुछ घुमंतू थे और कुछ स्थायी रूप से रहने वाले थे। बहुत सारे समूह सिर्फ़ शिकार करके, खाद्य पदार्थ बीन कर और मछलियाँ पकड़ कर गुज़ारा करते थे जबकि कुछ मक्का, फलियों, तंबाकू और कुम्हड़े की खेती करते थे। अन्य समूह जंगली पशुओं को पकड़ने में माहिर थे और सोलहवीं सदी से ही वनबिलाव का फ़र यूरोपीय व्यापारियों को बेचते रहे थे। चित्र 5 में अठारहवीं शताब्दी के प्रारंभिक वर्षों में विभिन्न कबीलों की अवस्थिति को दर्शाया गया है।

2018-19

© NCERT not to be republished

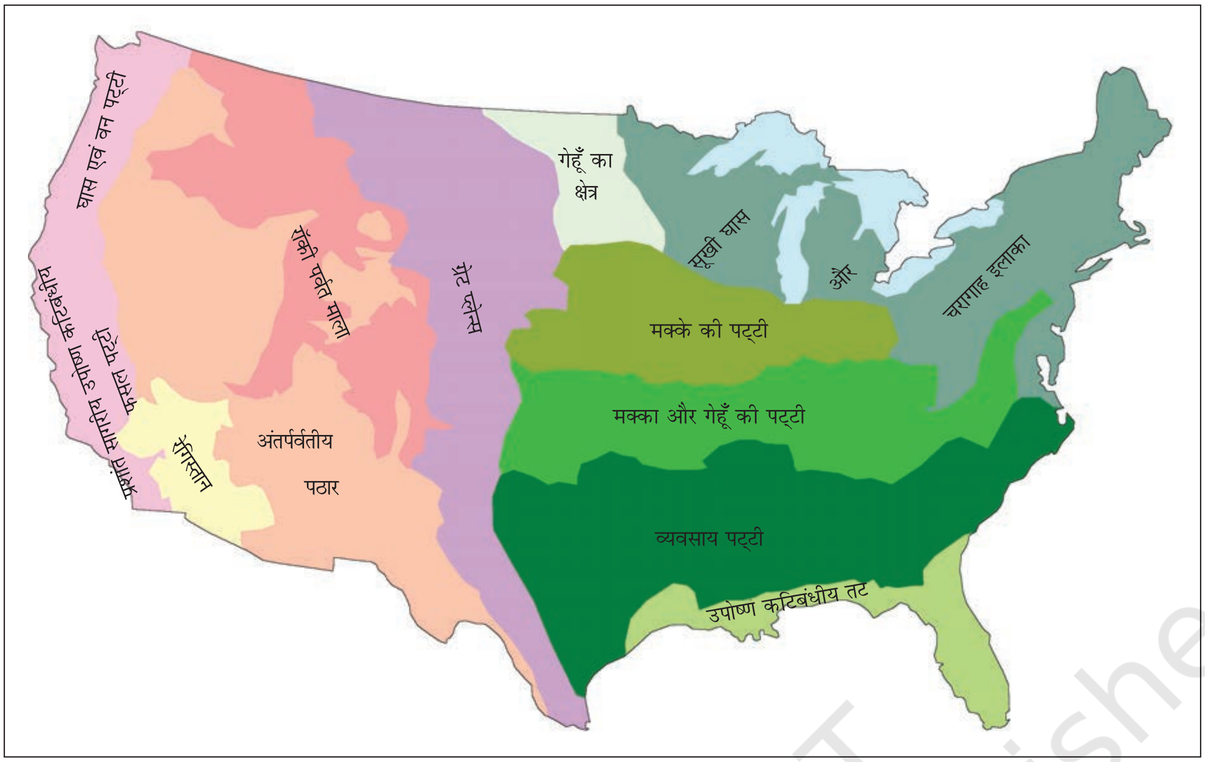

चित्र 6 : 1920 में अमेरिका के खेतिहर क्षेत्रों की स्थिति.
1920 के दशक में प्रकाशित बेकर की पुस्तक इकनॉमिक ज्यॉग्रफ़ी में संकलित लेखों के आधार पर।

बीसवीं सदी आते-आते यह भूदृश्य पूरी तरह बदल चुका था। श्वेत अमेरिकी पश्चिम की ओर फैल गए थे और उन्होंने वहाँ की ज़मीन को कृषि योग्य बना लिया था। इस प्रक्रिया में उन्होंने मूल कबीलों को उनकी जगहों से विस्थापित करके अलग-अलग खेतिहर इलाके बना लिए थे। कृषि उत्पादन के विश्व बाज़ार में अमेरिका की तूती बोलने लगी थी। यह परिवर्तन कैसे संभव हुआ? अमेरिका में बसने वाले ये नए लोग कौन थे? खेती के इस प्रसार से अमेरिका के मूल निवासी यानी इंडियन मूल के कबीलाई समुदायों के जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?

2.1 पश्चिम की ओर प्रसार तथा गेहूँ की खेती

अमेरिका में कृषि विस्तार का संबंध श्वेतों के पश्चिमी क्षेत्र में जाकर बसने से गहरे रूप से जुड़ा है। 1775 से 1783 तक चले अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम और संयुक्त राज्य अमेरिका के गठन के बाद श्वेत अमेरिकी पश्चिमी इलाकों की तरफ़ बढ़ने लगे। टॉमस जेफ़र्सन के 1800 में अमेरिका का राष्ट्रपति बनने तक लगभग सात लाख श्वेत, दर्रों के रास्ते अपलेशियन पठारी क्षेत्र में जाकर बस चुके थे। पूर्वी तट से देखने पर अमेरिका संभावनाओं से भरा दिखता था। वहाँ के बियाबानों को कृषि योग्य भूमि में बदला जा सकता था, जंगल से इमारती लकड़ी का निर्यात किया जा सकता था, खाल के लिए पशुओं का शिकार किया जा सकता था और पहाड़ियों से सोने जैसे खनिज पदार्थों का दोहन किया जा सकता था। लेकिन इसका

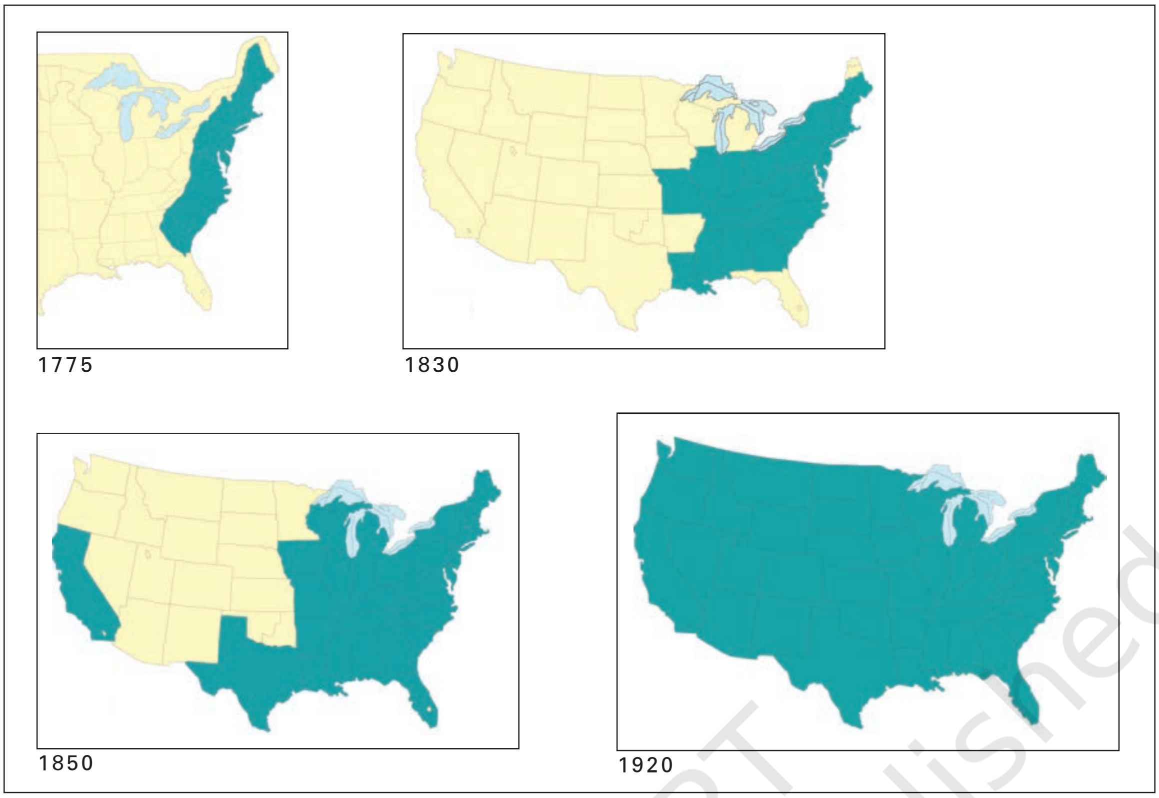

चित्र 7 - 1775 से 1920 के बीच श्वेत आप्रवासियों का पश्चिम की ओर प्रसार.

मतलब था कि पहले यहाँ के अश्वेत निवासियों को निकाल बाहर किया जाए। संयुक्त राज्य अमेरिका की सरकार ने 1800 के बाद के दशकों में औपचारिक नीति बना कर अमेरिकी इंडियनों को पहले मिसीसिपी नदी के पार और बाद में और भी पश्चिम की तरफ़ खदेड़ना शुरू किया। इस प्रक्रिया में कई लड़ाइयाँ लड़ी गईं, मूल निवासियों का जनसंहार किया गया और उनके गाँव जला दिए गए। इंडियनों ने प्रतिरोध किया, कई लड़ाइयों में जीते भी, लेकिन अंततः उन्हें समझौता-संधियाँ करनी पड़ीं और अपना घर-बार छोड़कर पश्चिम की ओर कूच करना पड़ा।

मूल निवासियों की जगहों पर नए प्रवासी बसने लगे। प्रवासियों की लहर पर लहर आती गई। अठारहवीं शताब्दी के पहले दशक तक ये प्रवासी अपलेशियन पठार में बस चुके थे और 1820-1850 के बीच उन्होंने मिसीसिपी की घाटी में भी पैर जमा लिए। उन्होंने जंगलों को काट-जलाकर, ठूँठ उखाड़कर, खेत और घर बना लिए। फिर उन्होंने बाकी जंगलों का सफ़ाया करके बाड़ें लगा दीं। इस ज़मीन पर वह मक्का और गेहूँ की खेती करने लगे।

शुरुआती वर्षों में इस उर्वर ज़मीन पर किसानों ने अच्छी फ़सलें पैदा कीं। जैसे ही एक जगह ज़मीन की पैदावार घट जाती, किसान बेहतर ज़मीन की तलाश में नई जगह चले जाते। मिसीसिपी नदी के पार स्थित विशालकाय मैदानों में प्रवासी आबादी का प्रसार 1860 के बाद की घटना है। बाद के दशकों में यह समूचा क्षेत्र अमेरिका के गेहूँ उत्पादन का एक बड़ा क्षेत्र बन गया।

चित्र 8 - सीमांत क्षेत्रों में सॉड मकान.
घास के मैदान साफ़ करने के दौरान आप्रवासी किसान इस तरह के घर बनाते थे। इस क्षेत्र में मकान बनाने के लिए लकड़ी का अभाव था।
(सौजन्य : फ्रेड हल्टस्ट्रैंड हिस्ट्री इन पिक्चर्स कलेक्शन, एनडीआईआरएस -एनडीएसयू, फ़ारगो)।

नए शब्द

सॉड : घास व मिट्टी का मिश्रण।

© NCERT not to be republished

अब ज़रा गेहूँ उत्पादक किसानों के बारे में कुछ विस्तार से बात की जाए। देखा जाए कि इन किसानों ने किस तरह घास के मैदानों को अमेरिका की 'रोटी की टोकरी' में तब्दील किया। उन्हें किन समस्याओं से जूझना पड़ा और इस प्रक्रिया के क्या परिणाम रहे?

चित्र 9 – छुट्टी की दोपहर को सुस्ताता एक किसान परिवार. डकोटा के विशाल मैदानों का बीसवीं सदी के पहले दशक में लिया गया चित्र।
(सौजन्य : फ़्रेड हल्टस्ट्रैंड हिस्ट्री इन पिक्चर्स कलेक्शन, एनडीआईआरएस–एनडीएसयू, फ़ारगो)।

2.2 गेहूँ उत्पादक किसान

उन्नीसवीं सदी के आखिरी सालों में अमेरिका के गेहूँ उत्पादन में ज़बर्दस्त वृद्धि हुई। इस दौरान अमेरिका की शहरी आबादी बढ़ती जा रही थी और निर्यात बाज़ार भी दिनोंदिन फैलता जा रहा था। माँग बढ़ने के साथ गेहूँ के दामों में भी उछाल आ रहा था। इससे उत्साहित होकर किसान गेहूँ उगाने की तरफ़ झुकने लगे। रेलवे के प्रसार से खाद्यान्नों को गेहूँ उत्पादक क्षेत्रों से निर्यात के लिए पूर्वी तट पर ले जाना आसान हो गया था। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत तक गेहूँ की माँग में और भी वृद्धि हुई तथा प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान गेहूँ के विश्व बाज़ार में भारी उछाल आया। रूसी गेहूँ की आपूर्ति पर रोक लगने के बाद गेहूँ के लिए यूरोप अमेरिका पर ही आश्रित था। अमेरिका के राष्ट्रपति विल्सन ने किसानों से वक्त की पुकार सुनने का आह्वान किया – 'खूब गेहूँ उपजाओ। गेहूँ ही हमें जंग जिताएगा।'

1910 में अमेरिका की 4.5 करोड़ एकड़ ज़मीन पर गेहूँ की खेती की जा रही थी। नौ साल बाद गेहूँ उत्पादन का क्षेत्रफल बढ़कर 7.4 करोड़ एकड़ यानी लगभग 65 प्रतिशत ज़्यादा हो गया था। इसमें से ज़्यादातर वृद्धि विशाल मैदानों (ग्रेट प्लेन्स) में हुई थी जहाँ नित नए क्षेत्रों को जोता जा रहा था। गेहूँ उत्पादन बहुधा बड़े किसानों के कब्ज़े में था–कई बड़े किसानों के पास तो दो–तीन हज़ार एकड़ तक ज़मीन होती थी।

चित्र 10 – सचल हल.
गौर करें कि हल का अगला हिस्सा एक छोटे से पहिए पर टिका हुआ है। इसमें पीछे की तरफ़ एक हत्था लगा होता था जिसकी मदद से हल को आगे-पीछे चलाया जा सकता था। इस हल में बैल या घोड़े जोते जाते थे (देखें चित्र 13)।

2.3 नई तकनीक का आगमन

गेहूँ उत्पादन में हुई यह विलक्षण वृद्धि नई तकनीक का परिणाम थी। उन्नीसवीं शताब्दी में नए प्रवासी जैसे-जैसे नई ज़मीन को अपने कब्ज़े में लेते गए वैसे-वैसे उन्होंने नई ज़रूरतों के मुताबिक अपनी तकनीक में भी बदलाव किए। जब वे लोग मध्य पश्चिम के घास के मैदानों में पहुँचे तो उनके वे साधारण हल बेकार साबित हुए जिनका वे पूर्वी तट पर इस्तेमाल करते आए थे। यहाँ के मैदान घनी घास से ढँके थे जिसकी जड़ें बहुत गहरी होती थीं। इस सख्त ज़मीन को तोड़ने के लिए कई तरह के हल विकसित किए गए। स्थानीय स्तर पर विकसित इन हलों में कुछ हल 12 फ़ुट लंबे होते थे। इन हलों का अगला हिस्सा छोटे-छोटे पहियों पर टिका होता था और उन्हें 6 बैल या घोड़े खींचते थे। बीसवीं शताब्दी की शुरुआत में विशाल मैदानी क्षेत्र के किसान इस सख्त ज़मीन को ट्रैक्टर और डिस्क हलों की मदद से गेहूँ की खेती करने के लिए तैयार करने में जुटे थे।

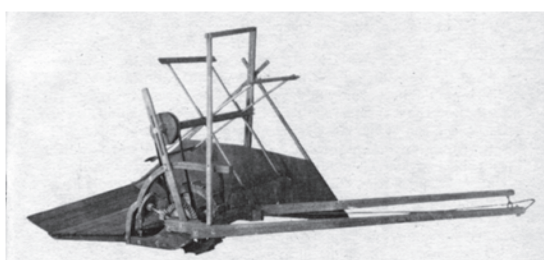

चित्र 11 – साइरस मैक्कॉर्मिक द्वारा 1831 में बनाया गया रीपर.

फ़सल पकने के बाद उसकी कटाई का नंबर आता था। 1830 से पहले फ़सल कटाई के लिए हँसिये का इस्तेमाल किया जाता था। यह एक ऐसा

चित्र 12 – उन्नीसवीं सदी के मध्य से पहले ऐसे हँसियों का इस्तेमाल घास काटने के लिए किया जाता था.

चित्र 13 – मशीनी युग से पहले नई ज़मीन को खेती के लिए इस तरह तैयार किया जाता था.

चित्र में बारह हलों के समूह में कई घोड़े जुते दिखाई दे रहे हैं।

(सौजन्य : फ़्रेड हल्टस्ट्रैंड हिस्ट्री इन पिक्चर्स कलेक्शन, एनडीआईआरएस-एनडीएसयू, फ़ारगो)।

चित्र 14 – ड्रिल मशीनों और ट्रैक्टरों द्वारा बीजों की रोपाई। उत्तरी डकोटा का एक कृषि फार्म, 1910.

यहाँ तीन ड्रिल और पैकर मशीनें दिखाई गई हैं। इन्हें ट्रैक्टर के पीछे बाँधा जाता था। ड्रिल मशीनें 10-12 फ़ुट लंबी होती थीं। प्रत्येक ड्रिल में 20 डिस्क लगी होती थीं। डिस्क का काम ज़मीन को बुआई के लिए तैयार करना होता था। पैकर्स रोपे गए बीजों पर मिट्टी डालने का काम करते थे। चित्र में दूर तक फैली रोपित ज़मीन दिखाई दे रही है।

सौजन्य : एफ़. ए. पज़ानदक चित्र संग्रह, एनडीआईआरएस-एनडीएसयू, फ़ारगो।

चित्र 15 – उत्तरी डकोटा के विशाल मैदानों में ज़मीन की सफ़ाई, 1910.

इस चित्र में मिनियापोलिस वाष्प ट्रैक्टर दिखाया गया है। ट्रैक्टर के पीछे जॉन डीरे हल बंधा है और उसमें धातु के फाल लगे हैं। इन फालों की सहायता से ज़मीन को आसानी से तोड़ा जा सकता था। घास की मज़बूत जड़ों का सफ़ाया करने में भी ये हल काफ़ी मददगार थे। मशीन के पीछे गहरे कूंड़ देखे जा सकते हैं। बायीं ओर की ज़मीन पर दूर-दूर तक घास फैली हुई है। इन मशीनों का इस्तेमाल गेहूँ उगाने वाले बड़े किसान ही कर पाते थे। (सौजन्य : फ़्रेड हल्टस्ट्रैंड हिस्ट्री इन पिक्चर्स कलेक्शन, एनडीआईआरएस-एनडीएसयू, फ़ारगो)।

© NCERT not to be republished

2018-19

काम था जिसे सैकड़ों स्त्री–पुरुष एक साथ लगकर करते थे। लेकिन 1831 में सायरस मैक्कॉर्मिक ने एक ऐसे औज़ार का आविष्कार किया जो एक ही दिन में इतना काम कर देता था जितना कि 16 आदमी हँसियों के साथ कर सकते थे। इस तरह बीसवीं शताब्दी के शुरू होते–होते अमेरिका के ज़्यादातर किसान फ़सल काटने के लिए कम्बाइन्ड हार्वेस्टर्स का इस्तेमाल करने लगे थे। इन मशीनों की सहायता से 500 एकड़ के खेत की कटाई का काम सिर्फ़ दो सप्ताह में ही निपटाया जा सकता था।

विशाल मैदानों के अमीर किसानों के लिए यह मशीन बहुत महत्त्वपूर्ण बन गई थी। गेहूँ के दाम आसमान छू रहे थे। उसकी माँग खत्म होने का नाम ही नहीं ले रही थी। इन मशीनों से ज़मीन के बड़े टुकड़ों पर फ़सल काटने, ठूँठ निकालने, घास हटाने और ज़मीन को दोबारा खेती के लिए तैयार करने का काम बहुत आसान हो गया था। यह सारा काम मशीनें बहुत जल्दी कर डालती थीं। इसके लिए मानव श्रम की भी बहुत आवश्यकता नहीं पड़ती थी। विद्युत से चलने वाली ये मशीनें इतनी उपयोगी थीं कि उनकी सहायता से सिर्फ़ चार व्यक्ति मिलकर एक मौसम में 2000 से 4000 एकड़ भूमि पर फ़सल पैदा कर सकते थे।

2.4 गरीब जनता की दशा

गरीब किसानों के लिए ये मशीनें बर्बादी बनकर आईं। बहुत सारे किसानों ने इन मशीनों को इस उम्मीद के साथ खरीदा था कि गेहूँ के दामों में पहले जैसी तेज़ी बनी रहेगी। इन किसानों को बैंक आसानी से ऋण दे देते थे। लेकिन ऋण को चुकाना मुश्किल काम होता था। ऋण अदा न करने की स्थिति में बहुत सारे किसानों को अपनी ज़मीन से ही हाथ धोना पड़ जाता था। और इसका मतलब होता था काम की नए सिरे से तलाश।

लेकिन इस काल में रोज़गार बहुत मुश्किल से मिल पाता था। बिजली चालित मशीनों के आगमन से मज़दूरों की ज़रूरत काफ़ी कम हो गई थी। इसके साथ ही 1920 के दशक के मध्य तक उन्नीसवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और बीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों की आर्थिक तेज़ी खत्म हो चली थी। महायुद्ध के उपरांत उत्पादन की हालत यह हो गई थी कि बाज़ार गेहूँ से अटा पड़ा था लेकिन खरीदार ढूँढ़े नहीं मिलते थे। ज़्यादातर किसानों के लिए यह संकट का समय था। गेहूँ के भंडार बढ़ते जा रहे थे। गोदामों में खाद्यान्न भरा रहता था। हालत यहाँ तक पहुँच गई थी कि गोदाम में रखे खाद्यान्न को पशुओं को खिलाया जा रहा था। गेहूँ के दाम गिरने से आयात बाज़ार ढह गया था। 1930 के दशक की जिस महामंदी का अकसर ज़िक्र किया जाता है उसकी पृष्ठभूमि में यही परिस्थितियाँ काम कर रही थीं। इस मंदी का असर हर जगह दिखाई पड़ता था।

2.5 'रोटी की टोकरी' से 'रेत के कटोरे' तक

विशाल मैदानों में गेहूँ की सघन खेती से कई समस्याएँ पैदा हुईं। 1930 के दशक में दक्षिण के मैदानों में रेतीले तूफ़ान आने शुरू हुए। इन तूफ़ानों की

चित्र 16 : पश्चिमी कंसास में काला तूफ़ान, 14 अप्रैल 1935 .

ऊँचाई 7,000 से 8,000 फ़ीट होती थी। गंदले कीचड़ की शक्ल में आने वाले इन तूफ़ानों से चौतरफ़ा तबाही फैल जाती थी। 1930 का पूरा दशक इन तूफ़ानों से आक्रांत रहा। इस पूरे काल में ऐसा कोई दिन या वर्ष नहीं रहा जब इन रेतीले तूफ़ानों ने तबाही न मचाई हो। जैसे ही आसमान में अंधेरा छाने लगता, रेत के ये तूफ़ान शहरों और खेतों को चारों ओर से घेर लेते। तूफ़ान के कारण सब कुछ अंधकारमय हो जाता था। फेफड़ों में धूल और कीचड़ भरने से पशु भारी संख्या में मरने लगे। रेतीले तूफ़ानों से खेत के खेत पट जाते थे और उनकी मेंड़ रेत में गुम हो जाती थी। यह रेत नदी की सतह पर इस कदर जम जाती थी कि मछलियाँ साँस तक नहीं ले पाती थीं। मैदानों में हर तरफ़ चिड़ियों और पशुओं की हड्डियाँ बिखरी दिखाई देती थीं। 1920 के दशक में गेहूँ के उत्पादन में क्रांति लाने वाले ट्रैक्टर और मशीनें अब रेत के ढेरों में फंस कर बेकार हो गए थे। ये मशीनें इस हद तक खराब हो चुकी थीं कि उनकी मरम्मत भी नहीं की जा सकती थी।

इस तबाही का कारण क्या था? रेतीले तूफ़ान क्यों पैदा हुए थे? तूफ़ानों का एक कारण तो 1930 के दशक के आरंभिक वर्षों में पड़ने वाला सूखा था। कई वर्षों तक बारिश न होने के कारण तापमान बढ़ता चला गया। लेकिन रेत के ये सामान्य तूफ़ान काले भयावह तूफ़ान का रूप इसलिए ले सके क्योंकि ज़मीन के एक विशाल हिस्से पर लगातार खेती करने के कारण ज़मीन की ऊपरी परत काफ़ी हद तक टूट गई थी। उस पर घास का नामोनिशान नहीं बचा था। उन्नीसवीं सदी के आरंभिक वर्षों में गेहूँ पैदा करने वाले किसानों ने ज़मीन के हर संभव हिस्से से घास साफ़ कर डाली थी। ये किसान ट्रैक्टरों की सहायता से इस ज़मीन को गेहूँ की खेती के लिए तैयार कर रहे थे। रेतीले तूफ़ान इसी असंतुलन से पैदा हुए थे। यह सारा क्षेत्र रेत के एक विशालकाय कटोरे में बदल गया था यानी खुशहाली का सपना एक डरावनी हकीकत बन कर रह गया था। प्रवासियों को लगता था कि वे सारी ज़मीन को अपने कब्ज़े में लेकर उसे गेहूँ की लहलहाती फ़सल में बदल डालेंगे और करोड़ों में खेलने लगेंगे। लेकिन तीस के दशक में उन्हें यह बात समझ में आई कि पर्यावरण के संतुलन का सम्मान करना कितना ज़रूरी है।

*चित्र 17 – **ड्राउट सर्वायवर्स :*** एलेक्ज़ैंडर होग का रेखाचित्र (1936).
होग ने अपने चित्रों में रेतीले तूफ़ानों से होने वाली तबाही और मौत के तांडव को दर्शाया है। लाइफ़ मैगज़ीन ने होग को रेतीले कटोरे का चित्रकार बताया था।

© NCERT not to be republished
2018-19

3 भारतीय किसान और अफ़ीम की खेती

आइए, अब भारत की ओर चलें और देखें कि अठारहवीं शताब्दी के अंतिम वर्षों और उन्नीसवीं शताब्दी की शुरुआत में भारत के ग्रामीण क्षेत्र में क्या चल रहा था।

जैसा कि आप जानते हैं, प्लासी के युद्ध (1757) के बाद भारत में धीरे-धीरे अंग्रेज़ी राज स्थापित हो चला था। औपनिवेशिक शासन के दौरान भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में आमूल बदलाव आए। अंग्रेज़ सत्ता के लिए राजस्व सरकारी आय का एक बड़ा स्रोत था। सरकार अपनी आय बढ़ाने के लिए भू-राजस्व (लगान) की एक नियमित व्यवस्था करना चाहती थी। इस नीति के तहत राजस्व की दर तथा खेती की जोत बढ़ाने के प्रयास भी किए गए। जैसे-जैसे खेती का क्षेत्र बढ़ता गया वैसे-वैसे जंगल और चरागाह कम होने लगे। किसानों और चरागाहों पर आश्रित समुदायों को इसके चलते कई समस्याओं का सामना करना पड़ा। अंग्रेज़ी सत्ता के कानूनों के तहत अब किसान जंगलों का मनचाहा प्रयोग नहीं कर सकते थे। सरकार ने जंगल और अन्य प्राकृतिक संसाधनों के उपयोग पर कई तरह की पाबंदियाँ लगा दी थीं। किसानों पर लगान जमा करने का दबाव हर समय बना रहता था।

औपनिवेशिक काल के दौरान भारत के ग्रामीण क्षेत्र ने विश्व बाज़ार की माँग के अनुसार कई नई फ़सलों को उगाना शुरू किया गया। उन्नीसवीं शताब्दी के आरंभिक वर्षों में नील जैसी व्यावसायिक फ़सलों की खेती इसी अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार की मांग के फलस्वरूप शुरू की गई थी। शताब्दी का अंत होते-होते यहाँ के किसान गन्ना, कपास, जूट (पटसन), गेहूँ और अन्य ऐसी ही निर्यात आधारित फ़सलें पैदा करने लगे थे। ये फ़सलें यूरोप की शहरी आबादी और इंग्लैंड स्थित लंकाशायर और मैनचेस्टर की कपड़ा मिलों की ज़रूरतों को पूरा करने के लिए पैदा की जा रही थीं।

भारतीय किसानों के लिए इस अंतर्राष्ट्रीय वाणिज्य और व्यापार से जुड़ने का अनुभव कैसा रहा, इस बात को हम अफ़ीम की खेती के माध्यम से समझने की कोशिश करेंगे। इससे हमें खेतिहर लोगों पर औपनिवेशिक शासन के प्रभाव को समझने में मदद मिलेगी। साथ ही हम यह भी जान सकेंगे कि इस दौरान उपनिवेशों में बाज़ार व्यवस्था किस तरह काम करती थी।

3.1 चाय का शौक : चीन के साथ व्यापार

भारत में अफ़ीम के उत्पादन का इतिहास चीन और इंग्लैंड के पारस्परिक व्यापार से गहरे रूप से जुड़ा है। अठारहवीं शताब्दी के आखिरी वर्षों के दौरान ईस्ट इंडिया कंपनी चीन से चाय और रेशम खरीदकर इंग्लैंड में बेचा करती थी। चाय की लोकप्रियता बढ़ने के साथ-साथ चाय का व्यापार दिनोंदिन महत्त्वपूर्ण होता गया। 1785 के आसपास इंग्लैंड में 1.5 करोड़ पौंड चाय का आयात किया जा रहा था। 1830 तक आते-आते यह आँकड़ा 3 करोड़ पौंड को पार कर चुका था। वास्तव में, इस समय तक ईस्ट इंडिया कंपनी के मुनाफ़े का एक बहुत बड़ा हिस्सा चाय के व्यापार से पैदा होने लगा था।

© NCERT not to be republished

इस व्यापार की एक समस्या यह थी कि इंग्लैंड में इस समय ऐसी किसी वस्तु का उत्पादन नहीं किया जाता था जिसे चीन के बाज़ार में आसानी से बेचा जा सके। चीन का मंचू शासक विदेशी व्यापारियों को संदेह की दृष्टि से देखता था। शासकों को भय था कि ये व्यापारी स्थानीय राजनीति में हस्तक्षेप किया करेंगे और शासकों की सत्ता में अड़ंगा लगाने की कोशिश करेंगे। कुल मिलाकर मंचू शासक विदेशी वस्तुओं के लिए चीन के दरवाज़े खोलने के पक्ष में नहीं थे।

आखिर ऐसी स्थिति में पश्चिम के व्यापारी चाय के व्यापार को कैसे जारी रख सकते थे। व्यापार संतुलन कायम रखना उनके लिए एक बड़ी समस्या बन गया था। व्यापारी चाय के बदले चाँदी के सिक्के (बुलियन) दिया करते थे। चाँदी के निर्यात को इंग्लैंड में अच्छी निगाह से नहीं देखा जाता था। यह एक तरह से इंग्लैंड के खज़ाने को खाली करना था। इंग्लैंड में यह सार्वजनिक चिंता का विषय बन गया था। लोगों में यह भावना घर करने लगी थी कि खज़ाना खाली होने से देश में गरीबी फैल जाएगी और राष्ट्रीय संपत्ति हाथ से निकल जाएगी। इसी कारण व्यापारी चाँदी का विकल्प ढूँढ़ने की कोशिश कर रहे थे। वे एक ऐसी वस्तु की तलाश में थे जिसे चीन के बाज़ार में बेचा जा सके।

अफ़ीम एक ऐसा ही उत्पाद था। चीन में अफ़ीम की शुरुआत सोलहवीं शताब्दी के प्रारंभ में पुर्तगालियों ने की थी लेकिन अफ़ीम को मुख्यतः

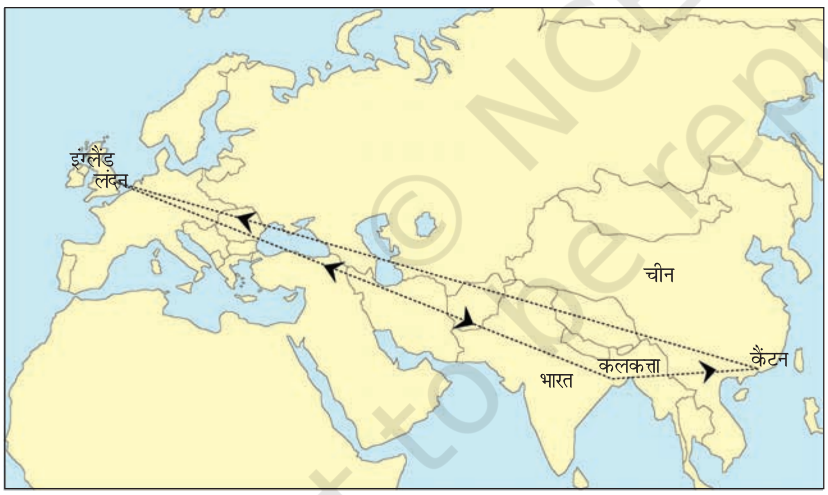

औषधि के रूप में देखा जाता था। बहुत-सी दवाइयों में इसका इस्तेमाल किया जाता था। चीन के शासक अफ़ीम की लत को लेकर चिंतित थे। वहाँ के शासक ने औषधि के अलावा अफ़ीम के उत्पादन और विक्रय पर रोक लगा रखी थी। लेकिन राजकीय पाबंदी के बावजूद अठारहवीं शताब्दी के मध्य में पश्चिम के व्यापारियों ने चीन में अफ़ीम का अवैध व्यापार करना शुरू कर दिया। पश्चिम के व्यापारी चीन के दक्षिण-पूर्वी बंदरगाहों पर अफ़ीम लाते थे और वहाँ से स्थानीय एजेंटों के ज़रिए देश के आंतरिक हिस्सों में भेज देते थे। 1820 के आसपास अफ़ीम के लगभग 10,000 क्रेट अवैध रूप से चीन में लाए जा रहे थे। 15 साल बाद गैरकानूनी ढंग से लाए जाने वाली इस अफ़ीम की मात्रा 35,000 क्रेट का आँकड़ा पार कर चुकी थी।

चित्र 18 – त्रिकोणीय व्यापार.

अंग्रेज़ व्यापारी भारत से अफ़ीम ले जाकर चीन में बेचते थे और चीन से इंग्लैंड को चाय का निर्यात करते थे। भारत और इंग्लैंड के बीच दोतरफ़ा व्यापार होता था। उन्नीसवीं सदी के आरंभ में भारत से इंग्लैंड को होने वाले हथकरघा निर्यात में गिरावट आने लगी और इसके स्थान पर कच्चे माल (रेशम व कपास) तथा खाद्यान्नों का निर्यात बढ़ने लगा। इंग्लैंड भारत में अपने यहाँ निर्मित माल भेजने लगा जिसके परिणामस्वरूप भारत के दस्तकारी उत्पादों का ह्रास होने लगा।

क्रियाकलाप

मानचित्र में दिखाई दे रहे तीर के निशानों के अनुसार बताएँ कि किस देश से कौन-सी वस्तु किस देश को भेजी जाती थी।

© NCERT not to be republished

चित्र 19 – चीन से भारत आए जहाज़ का चित्र.

थॉमस डेनियल की कृति। डेनियल अपने भतीजे विलियम डेनियल के साथ 1786 में भारत आए थे। वे दोनों पहले चीन गए थे। वहाँ कुछ समय बिताने के बाद वे कैंटन, दक्षिण चीन से भारत पहुँचे। उनका जहाज़ भारत के एक बंदरगाह पर पंजीकृत था। लेकिन इस जहाज़ से पूर्वी देशों के साथ व्यापार किया जाता था। चीन के साथ अफ़ीम के अवैध व्यापार के लिए इसी तरह के जहाज़ों का इस्तेमाल किया जाता था।

स्रोत च

1839 में चीन के शासक ने लिन ज़े-शू को कैंटन का विशेष आयुक्त नियुक्त किया। लिन ज़े-शू को अफ़ीम का व्यापार रोकने की जिम्मेदारी दी गई थी। वह 1839 के वसंत में कैंटन पहुँचा। ज़े-शू ने पद संभालते ही अफ़ीम के व्यापार में लगे 1600 लोगों को गिरफ़्तार करने के आदेश दिए और 11,000 पौंड अफ़ीम जब्त कर ली। इसके बाद लिन ज़े-शू ने विदेशी फ़ैक्ट्रियों को अफ़ीम का स्टॉक खाली करने की हिदायत दी। इस कार्रवाई के तहत अफ़ीम के 20,000 क्रेट नष्ट किए गए। ज़े-शू के कैंटन में विदेशी व्यापार पर रोक लगाने से इंग्लैंड ने चीन के खिलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी। अफ़ीम युद्ध (1837-42) में चीन को मुँह की खानी पड़ी और उसे एक अपमानजनक संधि स्वीकार करनी पड़ी। संधि की शर्तों के अनुसार अफ़ीम के व्यापार को कानूनी मान्यता दे दी गई और चीन के दरवाज़े विदेशी व्यापारियों के लिए खोल दिए गए। युद्ध से पहले लिन ने इंग्लैंड की महारानी विक्टोरिया को एक पत्र लिखा था जिसमें अफ़ीम के व्यापार की भर्त्सना की गई थी। यहाँ लिन द्वारा महारानी को लिखे गए उस पत्र का एक अंश प्रस्तुत है।

चीन में जो लोग अफ़ीम की खरीद-फ़रोख्त करते हैं या उसका सेवन करते हैं उन्हें मृत्युदंड दिया जाना चाहिए। अगर हम अफ़ीम बेचने वाले इन बर्बर लोगों के अपराधों की जाँच करें और उनकी हरकतों से देश को होने वाले नुकसान का जायज़ा लें तो इन लोगों को मृत्युदंड देना कहीं से गलत नहीं लगता...

आपका देश चीन से साठ या सत्तर हज़ार ली (तीन ली, एक मील के बराबर होता है) दूर है। इसके बावजूद इन बर्बर लोगों के जहाज़ अफ़ीम के व्यापार के लिए चीन में आते हैं और भारी मुनाफ़ा कमाते हैं। चीन की संपत्ति का ये बर्बर व्यापारी अपने हित में दोहन कर रहे हैं। इसका मतलब यह है कि इन बर्बर व्यापारियों द्वारा कमाया गया धन वास्तव में चीन की संपत्ति है। इन लोगों को इस बात का कोई अधिकार नहीं है कि इस व्यापार के बदले वे चीन की जनता को यह खतरनाक नशीली दवा खिलाएँ। मैं पूछना चाहता हूँ कि आपकी नैतिकता कहाँ चली गई है। मैंने सुना है कि इंग्लैंड में अफ़ीम के सेवन पर सख्त रोक है। इसका कारण यह है कि आपका देश अफ़ीम के खतरों को समझता है। यदि आप अपने देश का नुकसान नहीं करना चाहते तो दूसरे देशों का नुकसान करने का भी आपको कोई अधिकार नहीं है। भला चीन इस बला का शिकार क्यों?

स्रोत : सूयू तेंग और जॉन फ़ेयरबैंक, *चाइनाज़ रेस्पॉन्स टू द वेस्ट* (1954)।

स्रोत

© NCERT not to be republished

इस तरह यह हुआ कि जहाँ इंग्लैंड में चीन से आयात की गई चाय लोगों की ज़बान पर चढ़ने लगी वहीं चीन की जनता अफ़ीम की लत का शिकार होने लगी। यह लत समाज के सभी वर्गों – दुकानदार, सरकारी कर्मचारी, सेना के लोग, उच्च वर्ग और भिखारियों में फैल गई थी। 1839 में कैंटन के विशेष आयुक्त लिन ज़े-शू के अनुसार चीन में 40 लाख लोग अफ़ीम का सेवन कर रहे थे। कैंटन में रहने वाले एक अंग्रेज़ डॉक्टर के मुताबिक लगभग 1 करोड़ 20 लाख लोग अफ़ीम की लत के आदी हो चुके थे। एक तरफ़ जहाँ चीन अफ़ीमचियों का देश बन गया था वहीं इंग्लैंड का चाय व्यापार दिनोंदिन प्रगति कर रहा था। अफ़ीम के इस अवैध व्यापार से हासिल की गई राशि का इस्तेमाल चाय खरीदने के लिए किया जा रहा था।

क्रियाकलाप

कल्पना करें कि चीन के शासक ने आपसे अफ़ीम के नुकसानदेह प्रभावों के बारे में एक पर्चा तैयार करने के लिए कहा है। पता लगाएँ कि अफ़ीम के सेवन का मनुष्य पर क्या-क्या प्रभाव पड़ता है। एक पर्चा तैयार करें और उसे आकर्षक शीर्षक दें।

3.2 अंग्रेज़ व्यापारी अफ़ीम कहाँ से प्राप्त करते थे?

अफ़ीम के व्यापार में भारतीय किसानों की भूमिका यहीं से शुरू होती है।

बंगाल विजय के बाद अंग्रेज़ों ने अपने कब्ज़े की ज़मीन पर अफ़ीम की खेती शुरू की। जैसे-जैसे चीन में अफ़ीम का बाज़ार बढ़ता गया वैसे-वैसे बंगाल के बंदरगाहों से अफ़ीम का निर्यात बढ़ने लगा। 1767 से पहले भारत से केवल 500 पेटी (दो **मन** के बराबर) अफ़ीम निर्यात की जाती थी। सिर्फ़ चार वर्षों के भीतर यह मात्रा तीन गुना बढ़ गई। 100 वर्ष बाद अर्थात् 1870 तक आते-आते सरकार हर वर्ष लगभग 50,000 पेटी अफ़ीम का निर्यात करने लगी थी।

दिनोंदिन बढ़ते व्यापार को कायम रखने के लिए अफ़ीम की माँग को बढ़ाना आवश्यक था लेकिन यह काम आसान नहीं था। आखिर किसानों को अफ़ीम की खेती के लिए कैसे तैयार किया जा सकता था? किसान अफ़ीम बोने के लिए तैयार नहीं थे। इसके कई कारण थे। सबसे पहले किसानों को अफ़ीम की खेती सबसे उर्वर ज़मीन पर करनी होती थी। खासतौर पर ऐसी ज़मीन पर जो गाँव के पास पड़ती थी। आमतौर पर ऐसी उपजाऊ ज़मीन पर किसान दाल पैदा करते थे। अच्छी और उर्वर ज़मीन पर अफ़ीम बोने का मतलब दाल की पैदावार से हाथ धोना था। उन्हें दाल की फ़सल के लिए कम उर्वर ज़मीन का इस्तेमाल करना पड़ रहा था। खराब ज़मीन में दालों का उत्पादन न केवल अनिश्चित रहता था बल्कि उसकी पैदावार भी काफ़ी कम रहती थी। दूसरे, बहुत सारे किसानों के पास ज़मीन थी ही नहीं। अफ़ीम की खेती के लिए ऐसे किसानों को भूस्वामियों को लगान देना पड़ता था। वे इन भूस्वामियों से बटाई पर ली गई ज़मीन पर अफ़ीम उगाते थे। गाँव के पास की ज़मीन की लगान दर बहुत ऊँची रहती थी। तीसरे, अफ़ीम की खेती बहुत मुश्किल से होती थी। अफ़ीम के नाजुक पौधे को जिंदा रखना बहुत मेहनत का काम था। अफ़ीम बोने के बाद किसान दूसरी फ़सलों पर ध्यान नहीं दे पाते थे। अंत में, सरकार अफ़ीम बोने के बदले किसानों को बहुत कम दाम देती थी। किसानों के लिए सरकारी मूल्य पर अफ़ीम पैदा करना घाटे का सौदा था।

नए शब्द

मन : भार की माप

1 मन : 40 सेर। 1 सेर 1 किलोग्राम से कुछ कम होता है।

क्रियाकलाप

कल्पना करें कि आप अफ़ीम की खेती का विरोध करने वाले किसानों का नेतृत्व कर रहे हैं। आपको ईस्ट इंडिया कंपनी के स्थानीय अधिकारियों से इस संबंध में बात करनी है। बातचीत कैसे आगे बढ़ेगी? कक्षा के विद्यार्थियों को दो समूह में बाँटें और चर्चा करें।

2018-19

3.3 किसानों को अफ़ीम की खेती के लिए कैसे मनाया गया?

किसानों को अफ़ीम की खेती करने के लिए अग्रिम रकम दी जाती थी। बंगाल और बिहार के ग्रामीण क्षेत्रों में गरीब किसानों की एक बड़ी जमात ऐसी थी जो हर समय आर्थिक संकट में घिरी रहती थी। भूस्वामी का कर चुकाने या अपने लिए भोजन और वस्त्र का प्रबंध करना उनके लिए हमेशा मुश्किल रहता था। 1780 के बाद गाँव के मुखिया इन किसानों को अफ़ीम पैदा करने के लिए अग्रिम रकम पेश करने लगे। ऋण की सुविधा इन किसानों के लिए बड़ी राहत बन कर आई। ऋण की सुविधा के चलते किसान न केवल अपनी तात्कालिक ज़रूरतों को पूरा कर पाते थे बल्कि पहले से लिए कर्ज़ को भी अदा करने की हालत में आ जाते थे। लेकिन इस ऋण व्यवस्था के साथ एक खराब बात यह जुड़ी हुई थी कि ऋण लेते ही किसान गाँव के प्रधान और सरकार के बंधुआ हो जाते थे। इन किसानों तक यह रकम अफ़ीम के सरकारी एजेंटों के जरिए पहुँचती थी। ये एजेंट गाँव के प्रधान को अग्रिम रकम देते थे और गाँव का प्रधान इन किसानों को। एक बार ऋण लेने के बाद किसान अफ़ीम बोने से मुकर नहीं सकते थे। इस व्यवस्था के तहत किसानों को एक निश्चित क्षेत्रफल में अफ़ीम बोनी पड़ती थी। फ़सल अफ़ीम के एजेंटों द्वारा काटी जाती थी। एक बार फ़सल बोने के बाद उस पर किसान का कोई अधिकार नहीं रह जाता था। वह इस ज़मीन पर कोई दूसरी फ़सल नहीं उगा सकता था। उसे इस फ़सल को कहीं और बेचने की भी आज़ादी नहीं थी। साथ ही फ़सल के दाम एजेंट द्वारा तय किए जाते थे और ये दाम हमेशा ही बहुत कम होते थे।

जहाँ तक अफ़ीम की खेती से होने वाली कम आय का सवाल है यह अफ़ीम के दाम बढ़ाने से दूर की जा सकती थी। लेकिन इस मामले में सरकार का रवैया सकारात्मक नहीं था। वह खुद इस बात के पक्ष में थी कि अफ़ीम का उत्पादन कम से कम लागत पर किया जाए और कलकत्ता के अफ़ीम एजेंटों को यह अफ़ीम ऊँचे दाम पर बेची जाए। कलकत्ता स्थित ये एजेंट इस अफ़ीम को चीन भेजने की व्यवस्था करते थे। अफ़ीम के इस क्रय और विक्रय का अंतर सरकार के खाते में जाता था। दूसरे शब्दों में यही सरकार का राजस्व होता था। अफ़ीम पैदा करने वाले किसानों को इतना कम मूल्य दिया जाता था कि अठारहवीं शताब्दी की शुरुआत तक आते-आते किसान बेहतर दाम की माँग करने लगे थे और अग्रिम पेशगी लेने से इन्कार करने लगे थे। बनारस के आसपास के क्षेत्र में अफ़ीम पैदा करने वाले किसानों ने तंग आकर इसकी खेती ही बंद कर दी थी। इसके बदले उन्होंने गन्ने और आलू की खेती अपना ली। बहुत सारे किसानों ने अपनी फ़सलों को घुमंतू व्यापारियों (पैकारों) को बेच डाला था। ये व्यापारी किसानों को बेहतर दाम देते थे।

1773 तक बंगाल सरकार ने अफ़ीम के व्यापार पर आधिपत्य जमा लिया। सरकार के अलावा कोई बाहरी व्यक्ति यह व्यापार नहीं कर सकता था। 1820 के दशक में अंग्रेज़ सरकार ने पाया कि उनके क्षेत्र में अफ़ीम का उत्पादन घटने लगा है। जबकि गैर-ब्रिटिश इलाकों में अफ़ीम की खेती खूब फल-फूल रही थी। मध्य भारत और राजस्थान जैसे गैर-ब्रिटिश क्षेत्रों में

स्रोत छ

1833 में इलाहाबाद के सहायक अफ़ीम एजेंट ने लिखा था :

'बोर्ड मानता है कि किसान अफ़ीम पैदा नहीं करना चाहते। पिछले दो वर्षों के दौरान मैं जमुना के दक्षिणी ज़िलों में रहने वाले किसानों के संपर्क में रहा हूँ और मैंने यह बात महसूस की है कि यहाँ के सभी किसान इस व्यवस्था से नाराज़ हैं। वे इसे कतई पसंद नहीं करते। इस मामले में मैंने कई जगह पड़ताल की है और मेरा अनुभव यह है कि अफ़ीम की खेती को किसान अभिशाप मानते हैं। वे अफ़ीम की खेती अपनी मर्ज़ी से नहीं बल्कि डंडे के ज़ोर पर करते हैं...। यह खेती कलेक्टर के आदेश के तहत शुरू की गई थी...। लोग बाग बताते हैं कि उनके साथ चपरासी बदतमीजी से पेश आते हैं और उनसे गाली-गलौज़ करते हैं...। किसानों की राय है कि अफ़ीम की खेती से उन्हें नुकसान हुआ है।'

बिनॉय चौधरी की पुस्तक *ग्रोथ ऑफ़ कमर्शियल एग्रीकल्चर इन बंगाल* से।

अफ़ीम का उत्पादन बदस्तूर जारी था। इन क्षेत्रों में स्थानीय व्यापारी किसानों को बेहतर मूल्य देते थे। 1820 के दशक में ये व्यापारी सशस्त्र दल–बल के साथ व्यापार करते थे। अंग्रेज़ों की दृष्टि में यह व्यापार अवैध था। वे इसे तस्करी मानते थे और इस पर रोक लगाना चाहते थे। सरकार अफ़ीम पर अपना आधिपत्य बनाए रखना चाहती थी इसलिए उसने रियासतों में तैनात अपने एजेंटों को इन व्यापारियों की अफ़ीम ज़ब्त करने और फ़सलों को नष्ट करने के आदेश दिए।

जब तक अफ़ीम का उत्पादन जारी रहा तब तक ब्रिटिश सरकार, किसान और स्थानीय व्यापारियों के बीच यह टकराव चलता रहा।

लेकिन इससे हमें यह अर्थ नहीं निकालना चाहिए कि औपनिवेशिक भारत में सभी किसानों की हालत अफ़ीम की खेती करने वाले किसानों जैसी ही थी। औपनिवेशिक भारत में अन्य किसानों की हालत के बारे में हम एक अलग अध्याय में बात करेंगे।

निष्कर्ष

इस अध्याय में आपने पढ़ा कि आधुनिक काल में विश्व के विभिन्न ग्रामीण क्षेत्रों में महत्त्वपूर्ण परिवर्तन आए। इन बदलावों पर नज़र डालते समय हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये बदलाव हर जगह एक जैसे नहीं थे। ग्रामीण क्षेत्र के सभी वर्गों पर इन परिवर्तनों का प्रभाव एक समान नहीं था। इन बदलावों से कुछ वर्गों को लाभ हुआ और कुछ को नुकसान। आधुनिकीकरण का यह इतिहास सिर्फ़ वैभवपूर्ण ही नहीं था। इसे केवल वृद्धि और विकास की एक शानदार कहानी भर नहीं कहा जा सकता। इस काल में लोगों को अपनी मूल जगह छोड़कर आजीविका की तलाश में अन्य स्थानों का रुख करना पड़ा। यह काल गरीबी, पर्यावरणीय संकट, सामाजिक विद्रोह, औपनिवेशीकरण और दमन का काल भी था। हमें इन बदलावों के विभिन्न पक्षों को समझने का प्रयास करना चाहिए क्योंकि आधुनिक विश्व में खेतिहर जनता और किसानों ने इस स्थिति का मुकाबला अलग–अलग ढंग से किया है।

चित्र 20 – उन्नीसवीं सदी में अफ़ीम की पेटियों को गाज़ीपुर रेलवे स्टेशन ले जाते किसान.

© NCERT not to be republished

क्रियाकलाप

1. 1650 से 1930 के बीच कृषि के क्षेत्र में आए महत्त्वपूर्ण बदलावों को दर्शाने के लिए एक कालरेखा तैयार करें।
2. नीचे दी गई सारणी में इस अध्याय में उल्लिखित घटनाओं के आधार पर जानकारी भरें। याद रखें कि किसी देश में एक से ज़्यादा बदलाव भी देखे जा सकते हैं।

क्रियाकलाप

देश	परिवर्तन	किसका नुकसान हुआ	किसको लाभ हुआ

प्रश्न

1. अठारहवीं शताब्दी में इंग्लैंड की ग्रामीण जनता खुले खेत की व्यवस्था को किस दृष्टि से देखती थी। संक्षेप में व्याख्या करें। इस व्यवस्था को
   - एक संपन्न किसान
   - एक मज़दूर
   - एक खेतिहर स्त्री

   की दृष्टि से देखने का प्रयास करें।
2. इंग्लैंड में हुए बाड़ाबंदी आंदोलन के कारणों की संक्षेप में व्याख्या करें।
3. इंग्लैंड के गरीब किसान थ्रेशिंग मशीनों का विरोध क्यों कर रहे थे?
4. कैप्टेन स्विंग कौन था? यह नाम किस बात का प्रतीक था और वह किन वर्गों का प्रतिनिधित्व करता था?
5. अमेरिका पर नए आप्रवासियों के पश्चिमी प्रसार का क्या प्रभाव पड़ा?
6. अमेरिका में फ़सल काटने वाली मशीनों के फ़ायदे-नुकसान क्या-क्या थे?
7. अमेरिका में गेहूँ की खेती में आए उछाल और बाद में पैदा हुए पर्यावरण संकट से हम क्या सबक ले सकते हैं?
8. अंग्रेज़ अफ़ीम की खेती करने के लिए भारतीय किसानों पर क्यों दबाव डाल रहे थे?
9. भारतीय किसान अफ़ीम की खेती के प्रति क्यों उदासीन थे?

© NCERT not to be republished

© NCERT
not to be republished